उमराव सिंह जाटव कृत 'थमेगा नहीं विद्रोह' उपन्यास में शिल्प

– डॉ. संजय आटेड़िया

शोध सार–

'थमेगा नहीं विद्रोह' उपन्यास ग्रामीण परिवेश को लेकर लिखा गया सामाजिक उपन्यास है। इसमें दलितों के जीवन चरित्रों के माध्यम से भारत की दलित समस्या को बताया गया है। शिल्प की दृष्टि से उपन्यास में उत्तरप्रदेश के गांवों एवं कस्बों में बोली जाने वाली ठेठ बोलियों का भरपूर प्रयोग संवाद में मिलता है। उपन्यास के कथानक में भाशा–शैली की विविधता है।

शोध पत्र–

'थमेगा नहीं विद्रोह' उपन्यास शिल्प की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। कथानक की पृश्ठभूमि उत्तरप्रदेश के दरियापुर की है। कथानक की शुरुआत में उपन्यासकार कहते हैं कि गांव में हिन्दी तीन तरह से प्रयुक्त होती है। 'उदाहरण के लिए 'कहां' जैसे शब्द को जाटव उच्चारित करते हैं 'कहां' और गूजर उच्चारित करते हैं 'कौंहों' कौन को कूण, डरौ को डर्यौ, पानी को पौणी, इत्यादि उच्चारण करते हैं। बेहद साधारण से वाक्य 'कहां जा रहे हो' को जाटव उच्चारित करते हैं 'कहां जा रहयो है', और गूजर उच्चारित करते हैं 'रै, कौंहौं जा रहयौ है'। इस 'रै' में उनकी सारी उद्दंडता छिपी है। इसलिए हर दूसरे–तीसरे वाक्य में उसे आवश्यक – अनावश्यक रूप से जोड़ दिया जाता है।

दरियापुर और आसपास के कितने ही गांवों के जाटवों में एक प्रथा सदियों से प्रचलित है। वे कहते हैं 'बेटी ब्याहेंगे पछांह में और बेटा पूरब में। अर्थात बहू ब्याह कर लाएंगे अलीगढ़, पूर्वी बुलंद भाहर से ही जहां ब्रजभाशा बोली जाती है।'[1]भाशा की भिन्नता यहां पर जातिगत आधार पर बंटी हुई थी। यही कारण है कि भाशा के स्तर पर शिल्प को बनाए रखने में उपन्यासकार खरे उतरे हैं। बोली की विविधता से शिल्प के सौंदर्य में वृद्धि हुई है।

उपन्यास में गांव की स्थिति और वहां के वातावरण का वर्णन किया है। 'दरियापुर में बैसाख–जेठ का महीना आ धमका है। बेहद गर्म मौसम है, पंखा झलते उसकी डंडी से कमर खुजाते और मुहल्ले के कुंए की 'मन' पर 'डोल' भर पानी की धारों तले राहत की थोड़ी बहुत सांस लेते लोग कह रहे हैं कि इतनी गर्मी उन्होंने पिछले पचास वर्षों में नहीं झेली है।..... इंसान और जानवर, सब पर हफ्तों बाद चैन भरी नींद की खुमारी है।'[2] यहां ग्रामीण परिवेश में प्रयुक्त प्रतीकों के माध्यम से शिल्प के प्रयोग का वर्णन देखा जा सकता है।

उपन्यास की पृष्ठभूमि ग्रामीण परिदृश्य बड़े रोचक तरीके से प्रस्तुत हुई है। इसमें खेती–किसानी को लेकर जो दृश्य उपन्यासकार ने निर्मित किए हैं, वे इस प्रकार हैं– 'गांव के खेतों में फसल पक कर तैयार है। सुनहले गेहूं, जौ, मटर की चमक आंखों को चौंधियाने लगी हैं।'[3]फाग माह के सुनहरे मौसम में खेत–खलिहानों की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन ग्रामीण परिदृश्य को और भी रंगीन कर देता है। 'फागुन की मस्ती और रंग अभी उतरा भी नहीं कि खेतों में गेहूं–जौ की फसल ने निष्कपट–सी दिखती अपनी हरी चुनरिया को, मानो चैत के वातावरण में आ पसरी गर्मी को भांप कर, हौले से अपना सुनहरा बदन अनावृत करने के लिए कसमसाना शुरू कर दिया है।'[4] यहां पर प्राकृतिक उपमानों को लेकर जो प्रयोग हुआ है, वह शिल्प के स्तर पर महत्त्वपूर्ण है।

उपन्यास में लोक जीवन के अनेक प्रतिबिंबों के दर्शन होते हैं। उपन्यास के पात्र हामीद की आत्महत्या पर गांव वालों की प्रतिक्रिया कुछ इस तरह से व्यक्त हुई है–'बेचारा हामीद! आह, हामीद! आह, नसरीन, आह, वह काला भुसंड फकीर![5]यहां पर एक ऐसा चित्र उपस्थित हुआ है, जो रचनात्मक दृष्टि से जीवंत आभास देता है। ग्रामीण परिदृश्य में उपस्थित प्रतीकों को देखिए– 'दरियापुर में गर्मी अब ढलान पर है। वर्शा की आहट बस आने को है। उमस भरे दिन रातें हैं। कई–कई बार नहाने पर भी पसीने से राहत नहीं है। मच्छर, ईत और घमौरियों ने जीना दूभर कर दिया है। ढोरों को डांस नहीं जीने दे रहे, पशु बेचारे उनके डंकों से बचने को पूंछ से पंखा झलते, पैर पटकते नृत्य जैसी भंगिमा में कूदफांद करते समय काट रहे हैं।'[6] उपन्यासकार ने यहां ग्राम जीवन के सजीव और निर्जीव उपमानों को लेकर जो अभिनव प्रयोग किए हैं, वह शिल्प के विकास के लिए जरूरी हैं। 'दरियापुर गांव में सावन का आवन हो चुका है, सो गली–मुहल्लों में जितने भी नीम के भारी–भरकम और युवा वृक्ष हैं उन पर झूले पड़ चुके हैं।'[7] इसी तरह कथानक में उपस्थित अन्य प्राकृतिक परिदृ य को देखिए– 'सावन, भादों, क्वार, कार्तिक कब के पीछे खिसक गए। फागुन की आहट है। दरियापुर गांव में फागुन का आगमन गाजे–बाजे, धूम–धमाके के साथ चाहे न भी आया हो लेकिन उसकी आहट सहज ही महसूस की जा सकती है।'[8]

उपन्यास में रेखाचित्र के माध्यम से विभिन्न पात्रों के वर्णन में शिल्प को स्पष्ट किया है। ग्रामीण सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को लेकर जो वर्णन उपन्यास में है, वह प्रतीकों और बिंबों से स्पष्ट होता है।' होराम–मुंडा का पिता, भर जेठ की गर्मी में बैलगाड़ी, रब्बाभा, बहली में बरात सजाकर बेटा ब्याहने गया। मुंडा नई नवेली दुल्हन को ब्याहकर घर लौटा। सुंदर बहू को पा, सास ने मुहल्ले–भर की स्त्रियों को हुलस–हुलस कर दिखाया, माथे को चूम हजार–हजार बलाएं लीं, चूल्हे में लाल मिर्च और 'सामर' झोंक कर बुरी नजर से बचाव का टोटका किया।

मुंडा की पत्नी कमलेश सचमुच में ही रूपवती थी। गौरवर्ण, चंद्रमा सी गोल मुखाकृति, नितंबों तक लटकती चोटी और मुंडा के कानों तक आती उसकी लंबाई।.....दो पतले होंठों को तनिक–सा भींच कर जब वह मुस्कुराती तो यों भान होता कि जैसे रातभर की ओस से भीगी दो सुर्ख लाल गुलाब की कलियां एक के ऊपर एक धरी हों।[9] रीति और परंपरा ग्रामीण जीवन की आस्था है। इसी के बल पर वे आत्म ाांति के लिए परंपरागत विकल्पों को अपनाते हैं। उपन्यास में प्राकृतिक उपादानों को लेकर स्त्री के रूप सौंदर्य का वर्णन किया है, वह प्रतीक–बिंब के स्तर पर सटीक बैठता है।

उपन्यास में चावली के माध्यम से शिल्प के विविध रूप देखने को मिलते हैं। 'चावली रहस्य के पर्दों में छुपा कोई पात्र नहीं है। पचासेक की उम्र है, रंग गोरा है–गांव में जिसे कहते हैं–'भूरा भक्क', वजन होगा कोई दो मन माने अस्सी किलो। स्वर्णाभूशणों से लदी फंदी जब चलती है तो धरती डोलती है, उसके भार से भी और जो भार उतारने के लिए बुलाया जाता है उसके कारण भी। पचासों कोस तक उसके जैसी कु ाल दाई नहीं है, विशेषताः उन अवांछित अजन्मे बच्चों से छुटकारे के लिए जिन्हें बेटी की करतूत के कारण माता–पिता नहीं चाहते!'[10] कथानक में चावली राजो से पैग बनाने का कहती है। राजो के पैग बनाने से मना करने पर चावली क्रोधित होती है। 'अरे! खसमन खानी! स्साली, कुतिया की जनी। जबान चलाना बी सीख गई है, चार दिन के भीतर ही! हवा लग गई, दरियापुर की तेरे को! अपने खसम के साथ जो पीकर तू चलित्तर करै हैगी उसै मैं सब जानू हूं!'[11] संवाद की भाशा में अश्लीलता है।

उपन्यास में फ्लैश बैक भौली का वर्णन भी देखने को मिलता है। कथानक में बाबा के साथ चावली बुलंद शहर फूफी के घर जाते हैं। चावली के साथ दुश्कर्म की घटना सुनकर फूफी खूब नाराज होती है और इसका सारा दोश चावली को देती है। उसे भला–बुरा कहती है। 'बाबा की हालत देख फूफी मुझ पर हाथ और जुबान दोनों चलाती रही, 'अरी, छिनाल! तू मर क्यों न गई थी.....नाक कटा दी कुनबा की..... बेसरम बनी हियां आने से पहले किसी कुआं, नहर, नद्दी में डूब क्यों न मरी।'[12] संवाद के माध्यम से भाषा में आक्रोश है।

उपन्यास में तुलाराम भगत को लेकर ग्रामीण जीवन में प्रयुक्त होने वाली आम बोलचाल की भाशा का प्रयोग किया है। तुलाराम मुहल्ले वालों से मंदिर बनाने की जिद को लेकर भरी पंचायत में कहता है कि 'सुण ल्यो सारे मोहल्ले वालो! तुम जिस चाहे कुआं–खाई में गिरो मेरी बला से! ईसाई बणो चाहे समाजी और चाहे बणो बुद्धू! मैंने तय कर लिया है कि अपने 'घेर'(पशुओं का बाड़ा) में मंदर बनाऊंगौ।.....भगती करूंगौ और देख लीजो भगवान आवेंगे हमारे कस्ट हरनै।'[13] मुहल्ले वालों के साथ गांव के गूजरों से भी उसने बैर कर ली थी। एक दिन तुल्ला को मारने कई गूजर लाठी लेकर आते देख उसकी पत्नी दयाबती रोते हुए कहती है कि'आय गए...आय गए.....गूजर आय गए... .मारिबै कू.. . आय गए। अरे मुहल्ले बारेओ...कर हमें मरजान दे ओगे.. .रे...।' तब मुहल्ले का जयचंद हुंकार भर कर कहता है कि 'तुल्लै भैया, इकलौ मत समझियो अपणे आपको, हम आए।' और पीछे मुड़कर चिल्लाया, 'दलपत...सूरज... लछमन..., तुल्ले घिर गयौ...रे...लिकड़ों बाहर...का मरवाओगे...उसे।'[14]

उपन्यास का अंतिम भाग फ्लैश बैक शैली में लिखा गया है। इसमें दरियाव नामक पात्र के जीवन से जुड़ी विभिन्न घटनाओं का जिक्र हैं। उपन्यास में संवादों की भूमिका ने शिल्प के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पात्रों के माध्यम से सामाजिक परिवेश में अपने विचारों का आदान–प्रदान औपन्यासिक तत्त्वों को पूर्ण करता दिखाई देता है। प्राकृतिक बिंबों के प्रयोग से शिल्प की एक नई भाव–भूमि निर्मित हुई है।

संदर्भ–

1. उमरावसिंह जाटव, थमेगा नहीं विद्रोह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2008, पृश्ठ–23।
2. वही, पृष्ठ–25
3. वही, पृष्ठ–27
4. वही, पृष्ठ–30
5. वही, पृष्ठ–61
6. वही, पृष्ठ–95
7. वही, पृष्ठ–98
8. वही, पृष्ठ–108
9. वही, पृष्ठ–137
10. वही, पृष्ठ–165
11. वही, पृष्ठ–173
12. वही, पृष्ठ–215
13. वही, पृष्ठ–237
14. वही, पृष्ठ–253

**– शासकीय महाविद्यालय, रावटी,
जिला–रतलाम, मध्यप्रदेश**